Chap-3

तृतीय अध्याय

आधुनिक युग में पारिवारिक जीवन के आयाम : बदलते हुए भारतीय जीवन मूल्यों के विशेष सन्दर्भ में

आधुनिक शब्द विषयक जो अनेक विध धारणाएँ डॉ० नगेन्द्र ने प्रस्तुत की हैं[1], उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द नये जीवन दर्शन या नये दृष्टिकोण का द्योतन करता है । आज के युग में बौद्धिकता के परिणाम-स्वरूप वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ और परंपरानुगामिता के स्थान पर हमारा जीवन नवीनता के प्रति आकर्षण, प्राचीनता का पुनर्मूल्यांकन, सम-सामायिकता तथा वर्तमान का युग- बोध आदि तत्वों के साथ अग्रसर हो रहा है । वैसे कोई परंपरा-प्रवाह से एकदम कटा हुआ नहीं रहता और इस कारण आधुनिकता का आशय मध्यकाल से नितान्त भिन्न भी नहीं कहा जा सकता ।[2] इसका कारण यह है कि मनुष्य भले ही वर्तमान में जीता हुआ उसकी चेतना से परिपूर्ण हो, किन्तु अतीत के संस्कार और अनागत की कल्पना भी उसके जीवन में गतिशील रहती है ।

उपर्युक्त अवधारणा के सन्दर्भ में जब हम आधुनिक भारत पर विचार करते हैं तब सामान्यतया आधुनिक युग का आरंभ भारत में ब्रिटिश शासन की पूर्ण प्रतिष्ठा से माना जाता है । यह सांस्कृतिक नवोन्मेष का काल है, जिसमें समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा को नवीन व्याख्या से सम्बद्ध कर प्रस्तुत किया गया । इसमें दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय, विवेकानन्द आदि महापुरुषों का योगदान उल्लेखनीय है । इनके द्वारा समाज की विकृत रूढ़ियों के विरोध के साथ-साथ चिन्तन मनन में आधुनिक बौद्धिकता का भी समावेश हुआ । द्वितीयत: यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात् अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त

मध्यवर्गीय समाज का क्रमश: विकास हो चला । उक्त विकास में नयी शिक्षा व्यवस्था के साथ- साथ उद्योगों की प्रतिष्ठा का भी योगदान है, जो संपूर्ण उन्नीसवीं शताब्दी में दिखायी पड़ता है । अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग शनै: शनै: नवीन जीवन पद्धति तथा नवीन आचार- व्यवहार अपनाता जा रहा था ।

आधुनिकता से सम्बंधित उपर्युक्त वस्तु-स्थिति पर विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में आधुनिकता का बीज-वपन हुआ । इसी बीच अंग्रेजी शिक्षा, सरकारी नौकरियों, तथा नये उद्योगधन्धों का विकास इन सभी के परिणाम तथा अर्थ - व्यवस्थानुसार क्रमश: मध्यवर्ग का विकास होता गया और उसी के साथ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग की क्रमश:संख्यावृद्धि होती गयी । यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के आरंभ से आज तक दिखायी पड़ती है । अंग्रेजी राज्य की समाप्ति के पश्चात भी नये औद्योगिक प्रतिष्ठानों, यूरोपीय सम्पर्क के अधाधिक विकास, नयी रीति - नीतियों के अपनाने के लिए उत्साह और विशेष कर नये जीवन मूल्यों के विकास ने आज हमें आधुनिकता के परिपूर्ण विकास या विस्तार के क्षेत्र में पहुँचा दिया है । इसका विस्तृत विवेचन हमारा प्रतिपाद्य नहीं है । अत: विषयगत सीमाओं में रह कर यहाँ उसके किंचित पूर्व के जीवन- आयामों से इस अनुशीलन का आरम्भ करना अधिक युक्ति संगत होगा ।

स्वातन्त्र्योत्तर कालीन जीवन -आयाम :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उपरिनिर्दिष्ट मानसिक स्थिति में पर्याप्त

परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। पंचवर्षीय योजनाओं ने नव- निर्माण के संकल्प को साकार रूप देने का प्रयत्न किया। इससे परंपरागत अर्थ-व्यवस्था तथा प्रकारान्तर से सामाजिक परिवेश में परिवर्तन हुआ। वैसे लगभग सन् १९३६ ई० के बाद से प्रगतिशील अथवा मार्क्सवादी आन्दोलन ने भी बौद्धिकता और वर्ग-हीन समाज के निर्माण का नारा दिया था, किन्तु इसका प्रभाव सीमित ही दिखायी पड़ता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक विध प्रवृत्तियाँ ऐसी दिखायी पड़ती हैं, जिन्होंने देश के जीवन में गहरा परि-वर्तन उपस्थित किया। इस युग में उच्च शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से हुआ। भारत सरकार ने अर्थ - व्यवस्था के क्षेत्र में सर्वाधिक बल बड़े- बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर दिया, इसके कारण तकनीकी शिक्षा का भी विस्तार हुआ। इन परिस्थितियों के परिणाम- स्वरूप पाश्चात्य देशों के साथ यहाँ के जन-जीवन का सम्पर्क स्वाभाविक रूप से बढ़ गया। हमने उनसे सहायता ही नहीं ली, अपितु प्रेरणा भी प्राप्त की। ये सभी परिस्थितियाँ नवीन - चेतना के विस्तार में उत्तरदायी कही जा सकती हैं। शिक्षा के विस्तार ने आर्थिक सम्पन्नता सामाजिक चिन्तन तथा धर्म निरपेक्षता की भावना का विकास किया। नेताओं तथा समाज सुधारकों के समक्ष वर्ग - विहीन तथा धर्म- निरपेक्ष समाजवादी आदर्श था जो पूर्णतया चरितार्थ न हो सका, क्योंकि मनोभाव व लक्ष्य तथा रूढ़िबद्ध संस्कारों के मध्य व्यापक अन्तर था। स्वाधीनता पूर्व की समस्त बातें, आश्वासन तथा अपेक्षाएँ कालान्तर में उलट गयीं। फलस्वरूप व्यक्ति मानसिक दासता का शिकार अधिक हुआ। नेताओं के आचार- विचार तथा करनी और कथनी में अन्तर - निरन्तर बढ़ता गया। अपने समस्त समाजवादी नारों के बावजूद देश में भ्रष्टाचार, गरीबी और शोषण बढ़ता ही गया। दूसरी ओर नयी अर्थ - व्यवस्था से वर्ग-चेतना

को भी महत्व मिला तथा स्वतन्त्रता के बाद भी नयी समाज व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी।

तृतीयत: आदर्श को प्रतिगामिता की ओर ले जाने वाली औद्योगिक प्रणाली ने जातिभेद को पूर्णतया विलीन नहीं होने दिया। उपजातियों के बंधन शिथिल हुए तथा बड़ी जातियों की श्रृंखलाएँ दृढ़ हो गयीं, तथा नये आर्थिक वर्ग और उनके संगठन बनते गये।

साठोत्तरकालीन परिस्थितियाँ एवं जीवन आयाम :

साठोत्तरकालीन परिस्थितियाँ राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं। अत: इन पर किंचित विचार करना आवश्यक हो जाता है। राजनैतिक दृष्टिकोण से यह मोहभंग का काल है। प्रारंभ में चीन ने बन्धुत्व से ओतप्रोत हो 'हिन्दी- चीनी, भाई- भाई' का नारा दिखावे के लिए लगाया था, जिससे भारत को चीन की ओर से निश्चिंतता हो गयी, किन्तु एकाएक २० अक्टूबर १९६२ को चीन के आक्रमण ने मोहभंग कर दिया। अन्य देशों की कटु आलोचना पर चीन ने युद्ध विराम किया तथा भारत के सुरक्षा मंत्री कृष्णमेनन को त्यागपत्र देना पड़ा। उस समय के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की प्रतिष्ठा को भी गहरा आघात पहुँचा। २७ मई १९६४ को उनका निधन हुआ। तत्पश्चात् डेढ़ वर्ष के अल्पकाल में लालबहादुर शास्त्री ने प्रधानमंत्री के रूप में अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की। सन् १९६५ में पाकिस्तान ने युद्ध आरम्भ किया जो श्री उथां के प्रयत्नों द्वारा बन्द कराया गया।

११ जनवरी १९६६ को ताशकंद-वार्ता के लिए गये शास्त्री जी का निधन हुआ, और देश की बागडोर श्रीमती इन्दिरा गाँधी के हाथ में आयी । १९६९ में श्रीमती गाँधी ने कांग्रेस को इण्डिकेट तथा सिण्डिकेट में विभाजित किया तथा बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया । 'गरीबी हटाओ ' के नारे से १९७१ के चुनाव में श्रीमती गाँधी ने सफलता प्राप्त की । दिसम्बर १९७१ में पुन: भारत - पाकिस्तान युद्ध हुआ जिसमें भारतीय सेना तथा बंगला 'मुक्ति वाहिनी' से १९७२ में पूर्वी पाकिस्तान एक स्वतंत्र बंगला देश के रूप में सामने आया । इससे श्रीमती गांधी को अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हुई । इन ऐतिहासिक घटनाक्रमों से बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों में क्षिप्र परिवर्तन तथा तज्जन्य चेतना के मोड़ों को देखा जा सकता है ।

बढ़ बढ़ती हुई मंहगाई, रोजी-रोटी के लिए व्यापक संघर्ष तथा भ्रष्टाचार के विरोध में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में अनेक छात्र आन्दोलन हुए । रेलमंत्री ललित नारायण मिश्र की हत्या समस्तीपुर में इन्हीं दिनों हुई । १२ जून १९७५ को इलाहाबाद हाईकोर्ट के मुख्य न्यायमूर्ति ने श्रीमती गाँधी के चुनाव को अमान्य घोषित कर दिया । इसके साथ ही लगभग उन्हीं तिथियों में गुजरात के चुनावों में कांग्रेस को अपना बहुत बहुमत खोना पड़ा । इससे देश में तहलका मच गया । २६ जून १९७५ को श्रीमती गाँधी ने आपात्कालीन स्थिति की घोषणा कर देश को एक बृहद जेलखाना बना दिया जिसमें मीसा के अन्तर्गत अनेक नेताओं को बन्द कर दिया गया । दूसरी ओर परिवार नियोजन सम्बंधी ध्वनियाँ देश के कोने- कोने में गूंजने लगीं । सन् १९७७ में स्वयं को प्रतिष्ठित कराने के प्रयत्न से श्रीमती गाँधी ने पुन: चुनाव की घोषणा की ।[३]

सामाजिक आर्थिक स्थितियाँ :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन् १९६० से १९७७ की स्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित होती रहीं । कारण कि इन्हीं दिनों तीन युद्ध हुए फलस्वरूप आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई साथ ही जब तक युद्ध चलता रहा कल- कारखाने युद्ध सामग्री तैयार करते थे अधिकांशत: मजदूर कार्य करने में व्यस्त रहे । युद्ध की समाप्ति पर युद्ध सामग्री की माँग कम हुई फलस्वरूप मजदूर भी कम कर दिये गये । आर्थिक स्थितियाँ सुदृढ़ न होने के कारण उत्पादन भी कम हुआ । इसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक, पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त रहा, जिसका कारण कभी वस्तुओं के मूल्य अधिक तथा कभी बहुत कम होना है ।

प्रशासन में भ्रष्टाचार भी शासन की अव्यवस्था के लिए उत्तरदायी कहा जा सकता है । बढ़ती हुई जनसंख्या ने बेरोजगारी को जन्म दिया । फलस्वरूप नवयुवकों में प्रेरणा तथा आकांक्षा का संचार न हो सका । शिक्षा संस्थान किसी सीमा तक राजनीतिक अखाड़ों में परिवर्तित होने लगे । सैद्धांतिक रूप से ग्रामों का विकास अवश्य हुआ, परन्तु सामान्य व्यक्ति की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ । प्रत्येक पार्टी एवं सरकार का उद्देश्य भले ही जन सेवा का रहा हो, किन्तु सामान्य व्यक्ति तथा मजदूर वर्ग का शोषण वे रोक नहीं सके । औद्योगिक विकास ने ग्रामीण व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया । सभी वर्गों के लोग व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की ओर आजीविका के लिए आकर्षित हुए । इस स्थानान्तरण के परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार का आदर्श शिथिल

होने लगा । साथ ही सामूहिक रूप से रहने पर जो सुरक्षा भावना थी उसके अभाव में मानव अकेला असहाय अनुभव करने लगा ।[४] जब दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ने लगती है तब मनुष्य का ध्यान स्वाभाविक रूप में न जिजिविषा जिजीविषा पर केन्द्रित हो जाता है और वैयक्तिकता का जन्म होने लगता है । इस स्थिति में आर्थिक सुविधा प्राचीन व्यवस्था के विघटन और नवीन के निर्माण का आधार बन जाती है ।[५]

इस नयी परिस्थिति के साथ-साथ विज्ञान के संस्कारों से बुद्धिवाद का विकास हो चला और धर्मशास्त्रों का मान घटने लगा । इसके परिणामस्वरूप आधुनिक समाज में धार्मिक अन्धविश्वासों एवं आस्थाओं की अन्धानुगामिता की प्रवृत्ति को गहरा आघात पहुँचने के साथ-साथ उन्हें अनावश्यक माना जाने लगा है । स्वर्ग और नरक की मान्यताएँ क्षीण एवं काल्पनिक प्रतीत होने लगीं । मनुष्य यह समझने लगा है कि जो बात बुद्धिग्राह्य नहीं है, उसका न समझना ही उचित है । इतना ही नहीं अपितु ऐसी बातों के अन्धानुसरण को हीन दृष्टि से देखकर उनके मूलोच्छेदन का भी प्रयास विचारकों द्वारा होता रहता है । ज्ञान की जागृति के साथ बुद्धि ने उन मनुष्यों को जिनका जन्म भय और निर्धनता के मध्य हुआ था, उन्हें उक्त बौद्धिकता ने भय के समस्त सम्बंधों से मुक्त कर दिया । परिणामस्वरूप भोगवादी दर्शन की ओर अत्यन्त उत्साह से दौड़ लग गयी, जिसकी शिक्षा यही थी कि जीवन आनन्द भोगने के लिए ही है । विश्व के सभी आनन्द तब तक निर्दोष हैं जब तक यह प्रमाणित न हो जाये कि उनमें दोष या पाप भी होता है । प्राणि-विज्ञान तथा मनोविज्ञान के प्रचार से मनुष्य के मन में उदारता आ गयी उसकी असहिष्णुता और ईर्ष्या कुछ कम होने

लगी । इसके अतिरिक्त हम सामाजिक सम्बंधों को शास्त्रीय नैतिक दृष्टि से न देखकर वैज्ञानिक दृष्टि से देखने लगे हैं । शारीरिक सम्बंधों को जीव विज्ञान व आधुनिक चिकित्सा प्रणाली तथा सामाजिक सम्बंधों को मनोविज्ञान व आधुनिक समाज -विज्ञान के आलोक में देखने की चेष्टा आज पर्याप्त मात्रा में विकसित हो चुकी है साथ ही इस विकास की दिशा में व्यक्ति निरन्तर गतिशील भी है । इसका परिणाम यह हुआ है कि यौनाचार के पाप किसी सीमा तक क्षन्तव्य होने के साथ स्वाभाविक भी माने जाने लगे हैं । बुद्धि के निर्बन्ध हो जाने के कारण समाज उच्छृंखल हो उठा । अनाचार, व्यभिचार, पर-पीड़न, आदि अपराधों की विभीषिका मानव की रचनात्मक उर्जस्विता को पतनोन्मुख करने लगी ।

देशवासियों ने स्वतंत्र भारत तथा पंचवर्षीय योजनाओं से विकसित जिस प्रगतिशीलता तथा अपने स्वतंत्र देश की कल्पना की थी वह साकार रूप न ले सकी । लोकतन्त्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुईं । व्यक्ति जिसमें पिस कर एक ओर व्यवस्था का तो दूसरी ओर प्रविधि का यंत्र मात्र बनता गया ।व्यक्ति ने पाया कि वर्तमान परिस्थिति में वह असहाय, क्षुद्र तथा निरर्थक प्राणी बनता जा रहा है, अत: सामाजिक ढांचे में परिवर्तन आने लगा । सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है । फलस्वरूप व्यक्ति के जीवनादर्श तथा जीवन दृष्टि के मानदण्ड में अन्तर आया । व्यक्ति चेतना तथा नारी स्वातंत्र्य भावना के कारण स्वच्छंद यौन-चेतना को भी प्रकारान्तर से प्रश्रय मिला । कारखानों और दफ्तरों में नारी-पुरुष के एक साथ कार्य करने से जहाँ पुरानी मान्यताओं को ठेस लगी,

वहाँ दूसरी ओर यौनाकर्षण के कारण नैतिक बन्धन भी शिथिल होने लगे । अत: कहा जा सकता है कि राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के कारण परिवार की व्यवस्था तथा उसके परिवेश में समुचित परिवर्तन आना उपर्युक्त परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अवश्यम्भावी था ।

संयुक्त परिवार : नये पारिवारिक जीवन आयाम :

मध्यवर्गीय भारतीय समाज अधिकांशत: परंपरा संयुक्त परिवार के रूप में रहता आया है । संयुक्त परिवार में मूल परिवार से एकाधिक पीढ़ियों के (असमान-समान अवस्था के वयस्क-अल्पवयस्क, तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के) सदस्य सम्मिलित हो सकते हैं ।[6] परिवार का आदर्श रूप सौहार्द्र, प्रेम, त्याग, सहयोग, आत्म त्याग तथा पारिवारिक गरिमा को प्रतिष्ठित करके स्वर्गिक अनुभूति का रस प्रदान करता है । सदस्यों में संयुक्त संगठन पर आधारित निकट के सम्बंधियों के सहयोग की व्यवस्था होती है । प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यतानुसार धन अर्जित करता है, जो सभी की सामूहिक संपत्ति बन जाता है । परिवार का वरिष्ठ व्यक्ति इस धन का सम्मिलित आवश्यकतानुसार उपयोग करता है दूसरे शब्दों में संयुक्त परिवार में केवल उत्पादन के साधनों का सामान्य स्वामित्व और श्रम के प्रतिफल का सामान्य उपयोग होता है ।[7] इसी प्रकार व्यक्ति तगत तथा सामूहिक जीवन के नानाविध कार्यों को परस्पर सहयोग से सम्पन्न किया जाता है । सुख- दु:ख में तथा पारिवारिक उत्सव -संस्कारों में सभी समान भाव-भूमि पर स्थित रहते हैं । इसमें स्वार्थ की लिप्सा से प्रभावित आचरण को पशु के आचरण के समान समझ कर हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा परिवार का लक्ष्य उसे समाज के एक प्रभावशाली घटक के रूप में प्रतिष्ठित करने का होता है ।

वर्तमान समाज में इस पारिवारिक ढांचे में पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है। क्योंकि उक्त आधारभूत परिस्थितियाँ ही इस समय बदल चुकी हैं। जिसके कारणों पर आगे विचार किया जा रहा है।

जीवन मूल्यों में संक्रमण :

जीवन मूल्यों से सम्बंधित विस्तृत चर्चा चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत की जा रही है। यहाँ उनके ऐतिहासिक विकास की भूमियों को ध्यान में रख कर केवल उनके संक्रमण की स्थिति पर विचार किया जा रहा है। बदलते हुए परिवेश में जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण से विकसित मूल्यों की स्वीकृति तथा परंपरागत मूल्यों की तर्क पूर्ण अस्वीकृति अथवा दूसरे शब्दों में परिवर्तित मानवीय सम्बंधों की बौद्धिक स्वीकृति ही मूल्यों का संक्रमण कहलाता है। आधुनिकता से मानव अपनी परंपरागत जीवन- पद्धति से क्रमशः मुक्त होकर अधिक यांत्रिक तथा गतिमान जीवन- पद्धति की ओर अग्रसर होता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संस्कृति तथा व्यक्तित्व में बहुत बड़ी मात्रा में परिवर्तन होते हैं जो प्रकारान्तर से दैनिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। समाज को प्रभावित करने वाली, व्यक्तिगत और समष्टिगत, भौतिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा सौन्दर्य सम्बंधी मान्यताओं के अतिरिक्त उसके जीवनगत लक्ष्य और प्रतिमानों से संचालित जीवन मूल्य होते हैं। ये लक्ष्य और प्रतिमान सामाजिक सम्बंधों तथा व्यवहारों के मूलाधार होते हैं। युग की संक्रान्ति से परंपरागत, जीवन मूल्यों में क्रमशः नये प्रतिमानों का संघर्ष, उनका विघटन तथा कालान्तर में नये मूल्यों का विकास होता है। फलतः एक युग के जीवन-

मूल्य परिस्थितियों के परिवर्तन की स्थिति वाले दूसरे युग में महत्वहीन लगते हैं।

प्रत्येक युग की अपनी जीवन दृष्टि होती है, जो युगीन परिस्थितियों से उद्भूत एवं परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होती है । इन्हें क्रमश: युगीन तथा शाश्वत मूल्य माना जाता है । इससे प्रकट है कि जीवन मूल्यों की अर्थवत्ता प्राय: युग सापेक्ष होती है । आज के युग में असन्तोष, विद्रोह, संशय, तनाव, अनास्था सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । लोग प्राय: विचारों में परम्परागत रीति-नीतियों को रूढ़िग्रस्त मान कर एक ओर उन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं, किन्तु दूसरी ओर उनकी अनेक बातों को जाने-अनजाने अपनाये भी रहते हैं । इस प्रकार वे परंपरा-प्रवाह से पूर्णतया असम्बद्ध नहीं कहे जा सकते । ग्रामीण जीवन के मध्य परंपरागत मूल्यों तथा मान्यताओं की प्रतिष्ठा किसी न किसी रूप में वर्तमान है, जबकि नगरों में उनका शनै: शनै: ह्रास होता जा रहा है । वैसे उक्त ह्रास गांवों के जीवन में भी देखा जा सकता है । परिवार मूल्यों की अनुभूति का प्रथम सोपान है जो मूल्य जीवन के होंगे वही परिवार के भी । साहित्य, समाज का दर्पण है अत: यह स्वयं सिद्ध है कि वही जीवन मूल्य साहित्य के भी होंगे ।[८]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के समय में जीवन- मूल्य क्षिप्र गति से परिवर्तित हो रहे हैं, जिनका कोई विश्वसनीय सीमान्त बिन्दु दृष्टि-गोचर नहीं होता । व्यक्ति जिस परंपरा का अनुसरण कर रहा है उसके प्रति न तो आश्वस्त है और न नवीनता के प्रति विश्वस्त । नवीन मूल्य, स्थितियाँ,

स्वीकृतियाँ उसके लिए उपयोगी होंगी अथवा घातक इस विषय में उसकी दृष्टि सन्देहात्मक है। फलस्वरूप मानव में परिवार गत भावना, सेवा, श्रद्धा आदि तत्व दृष्टिगोचर नहीं होते तथा परिवारों के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा है। समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण में 'परिवारों में किसी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन है।'[९] विस्तृत अर्थों में पारिवारिक विघटन सदस्यों को एक में बांधने वाली स्थितियों या क्रियाओं का कमजोर हो जाना, टूट जाना या उनमें असामंजस्य की स्थिति आना है। यहाँ तक कि आज का युग ही विघटन का युग प्रतीत होता है जिसमें समग्र समाज स्वयं के स्वार्थों से विघटित है तथा होता जा रहा है। इसी कारण मध्यवर्गीय समाज के विकास के साथ- साथ पारिवारिक संगठन तथा सम्बंधों में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखायी पड़ता है जिस पर किंचित विस्तार से विचार कर लेना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

विघटन तथा उसके कारण :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज का मानव सामुदायिक भावना से विरत प्रतीत होता है क्योंकि भौतिक दृष्टिकोण की सर्वोपरिता तथा व्यक्तिवादी चेतना के गहरे प्रभाव ने सार्वजनीन और समष्टिहित की भावना को लगभग समाप्त कर दिया है। भौतिक वस्तुओं के संचय की प्रवृत्ति, आविष्कारों का क्षेत्रीय वैविध्य, यातायात एवं संदेश-प्रेषण की सक्षम व्यवस्था, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं वैयक्तिक चेतना का विकास आदि ने मानव द्वारा स्वीकृत पारिवारिक जीवन के प्रतिमानों को विघटित करने में योग

दिया है ।[१०] जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस युग में उच्च शिक्षा का विस्तार हुआ जिससे आर्थिक सम्पन्नता, वैयक्तिकता तथा मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । नारी भी आर्थिक व मानसिक रूप से स्वतंत्र बनने लगी । पूर्ववर्ती विवेचन में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि भारत सरकार ने अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में सर्वाधिक बल बड़े- बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर दिया । औद्योगिक प्रतिष्ठानों की आवश्यकता पूर्ति तथा जन- साधारण को नये व्यवसाय देने के लिए तकनीकी शिक्षा का विस्तार हुआ । परिणाम स्वरूप पाश्चात्य देशों के साथ यहाँ के जन-जीवन का सम्पर्क बढ़ गया । ये सभी परि-स्थितियाँ नवीन- चेतना के विस्तार तथा पारिवारिक विघटन के लिए किसी सीमा तक उत्तरदायी हैं जिन पर किंचित विस्तार से विचार कर लेना आवश्यक है ।

१- वैयक्तिकता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक सम्पर्क का प्रभाव :

उपरिनिर्दिष्ट आर्थिक परिवर्तन के कारण शिक्षित वर्ग अधिकांशत: उद्योग, व्यवसाय तथा सेवावृत्ति के नये आयामों से जुड़ गया । कार्य क्षमता तथा अर्जन की असमानता के कारण उसमें ईर्ष्या, द्वेष, विद्रोह आदि भावनाओं का जन्म हुआ जिससे व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलने लगा । उसमें वैयक्तिकता आने लगी । प्रत्येक व्यक्ति को सन्तोष होने लगा कि उसका अर्जित धन परिवार के समस्त सदस्यों के लिए न रहकर अपने ही स्त्री- बच्चों पर व्यय हो रहा है । इस चेतना ने परिवार के निठल्ले व्यक्तियों को धन न देकर उस धन का संचय करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया । मध्यम वर्ग की सीमित आय भी उक्त वैयक्तिक

चेतना के लिए उत्तरदायी कही जा सकती है। वर्तमान समाज में किसी सीमा तक धन के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा होती है। इस मान्यता ने व्यक्ति वैयक्तिक धन- संचय के अनुरूप मात्र-भूमि तैयार की, तथा व्यक्तियों में आत्म-केन्द्रित मन: स्थिति को भी विकसित किया। इस मन: स्थिति ने व्यक्ति को संयुक्त परिवार से अलग रहकर जीवन यापन करने तथा एकाकी परिवार की स्थापना के लिए अवसर एवं प्रेरणा प्रदान की। प्राय: यह देखा जाता है कि उक्त परिवेश से कट कर इस नये परिवेश से जुड़ने पर एक और परम्परागत रूढ़ियों के कठोर नियंत्रण में शिथिलता आ जाती है तो दूसरी ओर व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन मिलता है। मनुष्य अपने व्यवसायिक वातावरण में दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आता है, फलस्वरूप स्त्री- पुरुष के नैतिक आचरण में भी शिथिलता आने की स्थिति उत्पन्न होती है तथा स्त्री- पुरुष के मध्य तीसरे व्यक्ति की कल्पना की सम्भावनाएँ अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। व्यक्ति- स्वातंत्र्य की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।[११] तथा दूसरी ओर यह भावना तीसरे व्यक्ति की स्थिति की सम्भावना को भी बढ़ा देती है। इसके मनोवैज्ञानिक कारणों पर पूर्ववर्ती अध्याय में विचार किया जा चुका है। इस प्रकार स्त्री- पुरुष परस्पर समानता रखते हुए उत्तरदायित्व के निर्वाह के साथ-साथ व्यक्तिगत अधिकार, सुख और समानता को महत्व देते जाते हैं। संतति- निग्रह के उपकरणों ने नारी को किसी सीमा तक आशंका के भार से मुक्त किया। यौन- विषयक नैतिकता के मापदण्ड में भी उचित परिवर्तन आने लगा। परम्परागत परिवारों में अविवाहित स्त्रियों के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा विवाहित के लिए पति के प्रति पूर्ण निष्ठा की अपेक्षा भी थी साथ ही पुरुष को किसी सीमा तक लैंगिक स्वच्छंदता

भी प्राप्त थी। वर्तमान समय में स्त्री- पुरुष दोनों के लिए नैतिक नियम समान बनते जा रहे हैं। यही कारण है कि आज विवाह जैसे परम्परागत बन्धन शिथिल हो गये हैं। विवाह को एक सामान्य सामाजिक व्यवस्था तथा यौन सन्तुष्टि को सहज आवश्यकता माना जाने लगा। एक ओर पुरुष स्वच्छंद सैक्स जीवन की अपेक्षा रखता है दूसरी ओर स्त्री विवाह संस्था को अपने व्यक्तित्व रक्षा के अनुसार मोड़ देना चाहती है। इन्हीं अपेक्षाओं के मध्य आपसी तनाव पर स्त्री- पुरुष सम्बंधों के कई प्रश्न और उनके उत्तर दिये जा रहे हैं। किन्तु इसके बावजूद भी प्रत्येक उत्तर नये प्रश्न की आधारशिला बन जाता है फलत: समस्याओं की निरन्तर स्थिति स्थायित्व पाने लगती है।[१२] जीवन सम्बंधी नवीन विचार- धाराओं के मध्य 'प्रेम में स्वतंत्रता' (Freedom in love), 'स्वातंत्र्य तथा व्यक्तिगत सुख' (Freedom and Individual happiness) तथा उन्मुक्त काम सम्बंधों को भी प्रश्रय मिला। प्रेम की स्वतंत्रता में कानून के स्थान पर विवाह का एक मात्र आधार प्रेम बना।[१३] व्यक्तिगत सुख के लिए यौन- सम्बंधों में पूर्ण स्वतंत्रता मानी जाने लगी। कहीं- कहीं उन्मुक्त सम्बंधों के कारण सन्तोषप्रद सम्बंध होने पर ही विवाह को स्थायी रूप प्राप्त हो सका अन्यथा बिना कानून की सहायता से यह विवाह- सम्बंध समाप्त किया जा सकता है। इस अवधि में सन्तानोत्पत्ति अवांछनीय होती है। वर्तमान समय में चलचित्रों में रोमांटिक प्रेम के अत्यधिक प्रचलन ने अपरिपक्व मस्तिष्क को युवा-युवतियों में उसे ही विवाह के आधार रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है जिनका नैतिक मूल्यों से कोई सम्बंध नहीं रह गया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विवाह में वैयक्तिक निर्णय ने परिवार के तद्गत दायित्व या

अधिकार का महत्व एक प्रकार से समाप्त कर दिया है । यह व्यवस्था जहाँ एक ओर वैयक्तिक चेतना का परिणाम है, वहाँ वह दूसरी ओर वैयक्तिक चेतना को और भी विस्तार प्रदान करती है । इससे परम्परागत धारणाओं के ध्वस्त होने का मार्ग अपने आप प्रशस्त हो चला है । इस प्रकार परंपरागत धारणाओं के टूटने तथा नवीन दृष्टिकोण के विकास के कारण संयुक्त परिवार व्यवस्था जो इतनी लम्बी अवधि तक अपने अस्तित्व को बनाये रख सकी, समाज की अन्य संस्थाओं को एक प्रकार से शासित करती रही, आज अपनी जड़ों से हिलती हुई दृष्टिगोचर होती है ।[१४] इस स्थिति को नारी की स्वतंत्रता की चेतना भी सम्बल प्रदान करती है जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट होता है ।

२-नारी का आत्मगौरव व स्वतंत्रता :

~~वैक~~ शिक्षा प्राप्ति के बढ़ते सुअवसर, भौगोलिक व्यवसायिक गतिशीलता (Mobility) तथा नये आर्थिक ढाँचों का उदय ही इस प्रवृत्ति के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं । शिक्षित तथा काम-काजी पत्नियों की संख्या में वृद्धि की प्रत्यक्ष घटना की प्रेरणा के मूल में दो प्रधान कारण दृष्टिगोचर होते हैं - पहला- नारी- स्वातंत्र्य की चेतना से प्रभावित होकर आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होने की भावना अथवा नारी की आर्थिक स्वतंत्रता तथा दूसरे- पारिवारिक जीवन में बढ़ती हुई आर्थिक आवश्यकता । वैयक्तिक चेतना के विषय में पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है । इसी ~~क्र~~ वैयक्तिक चेतना ने आधुनिक युग में नारी-स्वातंत्र्य की चेतना को और भी प्रबल बना दिया है । नारी परिवार में रहकर व्यक्ति स्वातंत्र्य की आकांक्षिणी है, तथा समाज भी खुले तौर पर, तो

कभी दबे हुए स्वरों में इसे समर्थन देता है । उक्त आकांक्षा की पूर्ति के लिए नारी सर्वप्रथम आर्थिक स्वतंत्रता की उपलब्धि में प्रवृत्त होती है । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इसकी प्राप्ति में केवल सुशिक्षित नारी ही प्राय: सक्षम सिद्ध होती है । इस परिस्थिति ने नारी में निश्चय ही आत्म गौरव की भावना को जगाया है । अब वह रूपगर्विता ही नहीं आर्थिक सन्दर्भों में पुरुष को सहयोग देने में इस समर्थ हो चली है । अत: स्वभावत: उसकी स्वतंत्रता आत्म स्वीकृति ही नहीं समाज-स्वीकृति भी बनती जा रही है । इसके यत्र-तत्र यह भी परिणाम देखे जाते हैं कि वह परिवार को प्रभावाक्रान्त करती है और ऐसी स्थिति पारिवारिक व्यवस्था में नये द्वन्द्वों को उपस्थित कर सकती है । वैसे द्वन्द्वों के अभाव में पारिवारिक जीवन अधिक सुखी एवं समृद्ध भी हो सकता है जो कि यत्र- तत्र दिखायी भी पड़ता है ।

यदि आर्थिक आवश्यकता के दृष्टिकोण से विचार करें तो आर्थिक संकट की स्थिति में परिवार के लिए आवश्यक आर्थिक साधनों की उपलब्धि में पत्नी का योगदान आवश्यक हो जाता है ।[१५] नि:सन्देह मध्यवर्गीय विवाहित हिन्दू महिलाओं का बिना विरोध नौकरी कर सकने का मुख्य कारण आज मध्यम वर्ग की आर्थिक समस्या तथा अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की शान-शौकत से रहने की स्पृह स्पृहा भी है । आज यह सभी स्वीकार करते हैं कि परिवार के रहन-सहन को सन्तुलित बनाये रखने के लिए पत्नी की कमाई किसी सीमा तक अनिवार्य हो गयी है ।[१६]

ख- यह उल्लेखनीय है कि शिक्षित कामकाजी महिलाओं को एक ओर

बाध्य थी, वर्तमान समय में विरोध करती है । फलस्वरूप सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ संयुक्त परिवार में उचित परिवर्तन लाती हैं । अवयस्क बच्चों की संरक्षता अधिनियम[२६] भी सन् १९५६ में ही पारित किया गया जिसके अनुसार परिवार के अवयस्क, अल्पवयस्कों को आर्थिक हित का संरक्षण प्रदान किया जाता है । अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा नियम के कारण प्रत्येक माता- पिता को छह वर्ष से ग्यारह वर्ष तक के बच्चों को शिक्षालयों में भेजना प्राय: आवश्यक है । आज की महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण सजग हैं । समय पड़ने पर राज्य द्वारा ~~मर्क~~ पारित अधिनियमों का अनुसरण कर न्यायालयों की शरण लेने लगी हैं । आज विधवाओं के पुनर्विवाह[२७] का अधिक विरोध नहीं मिलता । राजकीय नियंत्रण के अन्तर्गत परिवार नियोजन को भी महत्व मिला है । अब गर्भपात किसी भ्रूण की हत्या नहीं माना जाता वरन् इससे परिवार का सीमित आकार ही मधुरमय एवं अत्यधिक घनिष्ठ दृष्टिगोचर होता है । इस मधुरमय आधुनिक परिवार को भी सुख से वंचित करने वाली प्रवृत्ति दहेज प्रथा है जिसके कारण अनेक परिवारों में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं । अत: इस प्रथा पर स्वतंत्र रूप से विचार कर लेना प्रासंगिक ही होगा ।

४- दहेज प्रथा के परिणाम :

हिन्दू विवाह[२८] से सम्बंधित समस्याओं में दहेज-प्रथा अत्यन्त गंभीर समस्या के रूप में उभर कर आयी है, जो पारिवारिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करती है । दहेज साधारणतया वह सम्पत्ति है जो एक पुरुष को विवाह के समय अपनी पत्नी अथवा उसके परिवार से प्राप्त होती है ।[२९] आधुनिक समाज में धन का महत्व अधिक है, धनी व्यक्ति अधिक दहेज देकर अपनी अयोग्य

लड़कियों के लिए भी अच्छे वर क्रय कर लेते हैं जबकि धन के अभाव में अच्छी योग्य लड़कियों के लिए भी सुयोग्य वर उपलब्ध नहीं हो पाते । दहेज की अल्पता में सुयोग्य लड़कियों के साथ उनकी सासें भी दुर्व्यवहार करती देखी गयी हैं । दूसरी ओर अयोग्य वर के साथ सुन्दर और संस्कारवान लड़कियों के विवाह हो जाते हैं क्योंकि कन्या के पिता पर्याप्त धन नहीं जुटा पाते हैं । इसी प्रकार पर्याप्त वय वाले विधुरों के साथ कोमल वय की कन्याओं के विवाह भी उक्त धन की महत्ता तथा दहेज की विभीषिका के कारण होते देखे जाते हैं ।

उपर्युक्त परिस्थितियाँ पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत अनेक विध समस्याओं तथा विषमताओं का निर्माण करती जा रही है । जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि परिवार में नवागत वधू के प्रति सद्भावना तथा दुर्व्यवहार दहेज में प्राप्त धन सामग्री की अधिकता या न्यूनता पर कई बार देखी जाती है । सास- बहू के द्वन्द्व जो लम्बे कालखण्ड तक चलते हैं या यह कहा जाय कि दो में से एक की अन्तिम श्वासों तक भी चलते हैं उक्त वस्तुस्थिति से ही प्राय: संचालित या प्रेरित कहे जा सकते हैं । यहाँ तक कि परिवार में कभी-कभी बहू को इतना कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है कि वह आत्महत्या जैसा जघन्य अपराध करने के लिए भी तैयार हो जाती है । कई बार तो परिवार वाले ही अन्यत्र दहेज मिलने के लोभ में या उपर्युक्त द्वन्द्व की प्रतिक्रिया में बहू की हत्या तक कर देते हैं । ऐसी स्थिति में दहेज प्रथा-विवाह के लिए एक अभिशाप बन जाती है । समाचार-पत्रों में आये दिन कितनी ही घटनाएँ प्रकाशित होती हैं। सन् १९६१ में दहेज निरोधन विधेयक[30] पारित किया गया । इस अधिनियम में

दहेज लेने व देने पर प्रतिबंध है, परन्तु विवाह पर दिये गये उपहार दहेज के अंतर्गत नहीं माने गये हैं। अत: इस कारण इसमें त्रुटि है कि यह सिद्ध करना अत्यन्त कठिन है कि कौन सी वस्तु दहेज के अन्तर्गत है और कौन सी उपहार के रूप में स्नेहवश दी जा रही है। अत: उपर्युक्त अधिनियम के बावजूद भी दहेज प्रथा के परिणामस्वरूप विकसित पारिवारिक जीवन की विकृत और विश्रृंखलित समस्याएँ प्राय: वैसी ही बनी हुई है। साठोत्तर काल में समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाएँ विचार पत्रों में प्रकाशित विचार-गोष्ठियाँ, उनके विचार स्तम्भों में अंकित पुरुषों और स्त्रियों के अनेक विध वक्तव्य उक्त वस्तुस्थिति में किसी भी प्रकार के परिवर्तन के अभाव को घोतित करते हैं। इसी कारण अनेक वैचारिक आन्दोलन तथा सामूहिक आन्दोलन समाज सेवियों तथा महिलाओं की ओर से चलाये जा रहे हैं। दहेज प्रथा का एक दूसरा पक्ष भी है और वह यह है कि व्यक्ति का लोभ अपेक्षित तृप्ति के पश्चात् और भी बढ़ता है। अत: जो दहेज आज के सन्दर्भ में सन्तोषजनक माना जाता है, वह आगे चलकर, तो कभी दूसरों की देखा-देखी अपर्याप्त भी माना जाता है। इस प्रकार के भी अनेक तथ्य प्रकाश में आते जा रहे हैं। कि फलत: यह धारणा बन चुकी है कि जब तक इसके लिए समाज का दृष्टिकोण आमूल नहीं बदला जाता या ऐसी सशक्त सामाजिक क्रान्ति नहीं की जाती, तब तक यह प्रथा और इससे निर्मित पारिवारिक जीवन में विघटन एवं विकृतियों के स्थायी तत्व समाप्त नहीं हो सकते।

विघटन का मूल्यांकन तथा इतर आयाम :

पूर्ववर्ती विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक युग की अपनी जीवन दृष्टि होती है जो अधिकांशत: युगीन परिस्थितियों से उदभूत होती है। सामाजिक

गतिशीलता ऐसी प्रक्रिया है जिससे प्राचीन सामाजिक और आर्थिक सहयोग तथा परस्पर उत्सर्ग के जीवन मूल्य समाप्त होते जाते हैं तथा नवीन प्रतिमानों व मूल्यों के प्रति ललक सजग होती जाती है । उपर्युक्त प्रक्रिया का समवेत प्रयास आधुनिक जीवन के विकास का कारण बनता है ।

आदिम समाज में संपूर्ण सामाजिक संगठन पारिवारिक इकाइयों पर आधारित रहता था । संगठित संयुक्त परिवार ही बच्चों की एक ऐसी स्थायी समिति होती थी जिसका मुख्य कार्य बालक का सामाजीकरण करके उसे योग्य नागरिक बनाना होता था । संयुक्त परिवार में माता- पिता उच्चपद के अधिकारी माने जाते थे । बालकों का मुख्य कर्तव्य माता- पिता की सेवा तथा उनकी आज्ञा का पालन करना होता था । आज उसके अवशेष भले ही हों वह स्थिति समाप्त प्राय ही कही जायेगी । अत: पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज की अर्थ- व्यवस्था में जहाँ पति- पत्नी दोनों अर्थोपार्जन में व्यस्त रहते हैं वहाँ पर दो वृद्ध जन उपेक्षित हो सकते हैं अन्यथा पारिवारिक जीवन के छोटे- मोटे उत्तरदायित्वों को संभालना उनके लिए आवश्यक हो जायेगा । यदि ऐसी स्थिति नहीं है तब पारिवारिक जीवन असहयोग तथा टूटन की स्थिति में पहुँच जायेगा ।

आज का युग संशय, विभ्रम, तनाव, विद्रोह एवं अनास्था का युग है । कुंठा एवं असंतोष सर्वत्र मिलता है । समग्र समाज निहित स्वार्थों से विघटित होता जा रहा है । फलस्वरूप परस्पर निर्भरता का निरन्तर अभाव होता जा रहा है । यहां तक कि अनेक कार्य राज्य, समितियों तथा क्लबों द्वारा सम्पन्न होने लगे हैं ।

जो पहले संयुक्त परिवार द्वारा प्रतिपादित होते थे । परिणाम स्वरूप व्यक्ति को संयुक्त परिवार का आश्रय लेने की आवश्यकता कम होती जा रही है ।

यह उल्लेखनीय है कि युग के संक्रमण और वैयक्तिक जीवन मूल्यों के आग्रह के फलस्वरूप संयुक्त परिवार तीव्रता से विघटन प्रणाली में प्रवृत्त होने लगे । इस पारिवारिक विघटन में व्यक्ति का आत्मआग्रह(अति वैयक्तिकता) आधिपत्य कामना के रूप में मुखर होता है तो कहीं स्वातंत्र्य चेतना का आग्रह फलीभूत बनता है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव तथा स्वतंत्र यौन चेतना के से व्यक्ति त के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है जिसके कारण आत्म प्रदर्शन,संचय (अर्थ संग्रह) और अलगाव की प्रवृत्ति भी उसमें दृष्टिगोचर होती है ।[३१] शिक्षा के बढ़ते सुअवसरों ने नारी को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाकर नारी जागरण को स्वर दिया जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन हुआ ।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक विघटन के मुख्य कारण इस प्रकार हैं ।

१- वैयक्तिकता, व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा सामाजिक सम्पर्क का प्रभाव। इसके लिए शिक्षा का प्रसार, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, नारी और पुरुष की समानता की मान्यता विशेष रूप से उत्तरदायी है ।

२- नारी का आत्मगौरव व स्वतंत्रता के लिए नर-नारी के सम्बंधों की नयी भूमिका को उत्तरदायी माना जा सकता है ।

३- औद्योगीकरण और उसके परिणाम स्वरूप नगरीकरण ने संयुक्त परिवारों को प्रारंभ में तोड़ा तत्पश्चात अन्तर्जातीय तथा प्रेम- विवाहों की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला । पूर्व निर्दिष्ट व्यक्ति त स्वातंत्र्य की चेतना भी इसमें सहायक हुई ।

४- दहेज प्रथा ने परम्परागत मूल्यों और आधुनिक जीवन मूल्यों के बीच एक अत्यन्त दुर्धर्ष द्वन्द्व खड़ा कर दिया है ।

साठोत्तर युग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि सामाजिक जीवन मूल्यों को प्रभावित करने वाली मान्यताएँ, धारणाएँ, संकल्प, प्रतिमान, आदर्श, सामाजिक रीति- रिवाज तथा सामाजिक वर्गों के नये प्रतिमानों की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं । सामाजिक जीवन मूल्यों के टूटन में 'वर्ण- व्यवस्था' भी उत्तरदायी रही है जो आज आर्थिक धरातल पर वर्ग- चेतना के रूप में उभरी है। यह सामाजिक स्तर पर नयी बौद्धिकता तथा वैज्ञानिक विकास के कारण टूट रही है । विज्ञान से प्राप्त अनेक सुलभ साधनों ने व्यक्ति को सुख- सुविधा की ओर प्रेरित किया । यातायात के नये साधनों से नये सम्बन्ध, व रिश्ते बने जिसके फलस्वरूप पारिवारिक सम्बंधों तथा मूल्यों का पतन होने लगा ।

अत: हमें युगीन परिवेश में परंपरागत विकसनशील मूल्य तथा नये मूल्य प्राप्त होते हैं । जिनका साठोत्तरी हिंदी कहानियों में विशेष रूप से अंकन मिलता है । जीवन मूल्य क्या है ? कैसे बनते हैं ? प्राचीन मूल्यों का विघटन तथा नवीन मूल्यों का विकसित होना किस प्रकार सम्भव हो सकता है पर सम्यक् विचार करना यहाँ आवश्यक हो जाता है जो हमारे परवर्ती अध्याय का विषय है ।

--

सन्दर्भ- संकेत :

१- विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य -
डॉ० नगेन्द्र- नयी समीक्षा नये सन्दर्भ- पृ० ६१ से ६७ तक, शीर्षक-
आधुनिकता का प्रश्न : साहित्य के सन्दर्भ में।

२- दूसरा अर्थ विचार परक है, जिसके अनुसार आधुनिक एक विशिष्ट
दृष्टिकोण- मध्ययुगीन विचार पद्धति से भिन्न, एक नये जीवन-दर्शन
का वाचक है।`-उपरिवत्- पृ० ६१

३- दृष्टव्य- डॉ० बामन बी० अहिरे,(अप्रकाशित) शोधग्रन्थ `स्वातंत्र्योत्तर
हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना : एक सर्वेक्षण, पृ० ५०
तथा
डॉ० पारुकान्त देसाई, शोधग्रन्थ(अप्रकाशित)`हिन्दी उपन्यास साहित्य
की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास- पृ० २१८

४- डॉ० देवेश ठाकुर- कथाक्रम भाग-२, `स्वतंत्र्ये स्वातंत्र्योत्र हिंदी
कहानी : कथा यात्रा`- पृ० २ से ३ तक।

५- हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास-`नागरी प्रचारिणी सभा- भाग१४वां,
पृ० १९-२६

६- We call that house hold a joint family which has greater generation depth(i.e. three or more than the nuclear family and the members of which are related to one another by property income, and mutual rights and obligations.
Dr.I.P.Desai,-'The joint family in India' An Article in sociological Bulletin,Vol.V No.Z.Sept.1947,Page-148

७- Chandra Sekhar-'The family pattern in India-'An Article in illusted weekly of India, No.II 1958, Page-9

८- स्व० गजानन्द माधव मुक्तिबोध- `एक साहित्यिक की डायरी`-पृ० १२६

६- डॉ० सत्येन्द्र त्रिपाठी- सामाजिक विघटन- पृ० २०६

१०- Earnest W.Burgess-'The family in a changing Society'- May 1948-53 Page-415-422

११- डॉ० जी एस मट्ट- `भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति,पृ०७६८

१२- डॉ० भगवानदास वर्मा-कहानी की संवेदनशीलता, सिद्धान्त और प्रयोग-पृ०

१३- Ellenkey-'Love and Marriage'-Quated by Elliot and Merrill-Social disorganization-Page-359

१४- डॉ० इन्द्रदेव-भारतीय समाज- पृ० ६०

१५- Dr.Kapadia-Family in Transition-Page-99(1956)

१६- Ross-Hindu family in its Urban setting-Page 198(1961)

१७- Pauvel-'Maternal Employment in relation to family life'-Title-'Marriage and family living'-Vol.23,Nov.1961-Page-236

१८- डॉ० भगवानदास वर्मा- कहानी की संवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग- पृ० २०२

१६- डॉ० श्रीमती दैव कपूरिया- हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य तत्व का निरूपण-पृ०३६६

२०- डॉ० सत्येन्द्र त्रिपाठी- सामाजिक विघटन -पृ०२१०

२१- नरेन्द्र मोहन- हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा- सं० डॉ० रामदरश मिश्र,पृ० ५६

22. M.N.Srinivasan's-'Principles of Hindu Law' Chapt.-Nullity of Marriage and Divorce,Sub-Chapter-'Special Marriage Act- 1954'- Page-419,Vol.I,Fourth Edn.1969, Law Publishers,Sardar Patel Marge,Post Box No.77, Allahabad-1.

23. J.Ducan M.Derrett- 'Introduction to modern Hindu Law' Title-Marriage and Divorce-Page 136-243,Oxford University Press-1963

And

J.Ducan M.Derrett.-'A critique of modern Hindu law'-Chapt.-Marriage and Divorce Title-Quarrels,Seperation, reconciliation and Divorce,Page-287-357,N.M.Tripathi Private Limited,Bombay-1970.

24. Sunder Lal T.Desai,'Mulla Principles of Hindu Law'-Chapt-'Hindu succession Act 1956,Page No.823-948 Fourth Edition-1974,N.M.Tripathi Pvt.Ltd;Bombay.

25. S.K.Agrawal-'The twenty-one years supreme Court Digest 1950-70,Vol.III,Title-Hindu Women's Right to property Act'- 1937.Page-748-Law Book Co.Sardar Patel Marge, Post Box No.4,Allahabad-1972.

26. J.Duncan M.Derrett-'Introduction to modern Hindu Law'-Chapt.'Hindu minority and Guardianship Act 1956-Page-589-Oxford University Press-1963.

And

Dr.Sir Hari Singh Gour-'The penal law of India'-Page-337-340. Seventh edition,Vol.I,Law Publishers ,Sardar Patel Marge,Post Box No.77,Allahabad-1

27. M.N.Srinivasaka's-Principles of Hindu law' Vol.III, Chapt.The Hindu widow's Remarriage Act,1856(Bare Act) Page-25,Law Publisher,Allahabad-1970.

28. S.K.Agrawal,'The twenty-one years Supreme Court Digest-1950-70, Vol.III Chapt.'Hindu Marriage Act-1955,Page-734 Law Book Co.Sardar Patel Marg,Post Box No.4-Allahabad.

29. Ordinariey dowry is the property which a man receives when he marries either from his wife or from her family-Max Radin-Encyclopaedia of Social Sciences'-Dowry-Vol.V-Page-230.

30. J.Duncan M.Derrett.-'A critique of Modern Hindu Law'-Dowry system'-Page-306,N.M.Tripathi Pvt.Ltd;Bombay-1970

And

J.Duncan M.Derrett-'Introduction to Modern Hindu Law'-Chapt.-'Dowry Prohibition Act-1961'-Page-607 to 609. Oxford University Press-1963.

31- राजेन्द्र यादव-एक दुनिया समानान्तर- पृ0 30